प्रसंगशः

आलोक मेहता

अंग्रेजी भाषी भिखमंगे भी हैं महामहिम

दो लाख रुपये कमाना या विदेश जाना ही योग्यता का मानदंड नहीं

सुपर जासूस से उ.प्र. के राज्यपाल बने महामहिम टी.वी. राजेश्वर को संभव है संस्कृत के विशाल भंडार तथा महत्व का ज्ञान कम है। वाराणसी में उनकी टिप्पणी पर उपद्रव के साथ विरोध करने वालों का समर्थन न करते हुए भी महामहिम की राय से मैं असहमत हूं। महामहिम यह कैसे मान बैठे हैं कि संस्कृत शिक्षा उन्हीं के लिए फायदे की रह गई है जो पुजारी या संस्कृत शिक्षक बनना चाहते हैं। आखिरकार, संस्कृत भाषा के बल में अंग्रेजी, फ्रेंच, डोएच, स्पेनिश से अधिक सशक्त और समृद्ध रही है। यही नहीं अन्य विषयों के साथ संस्कृत पर अधिकार रखने वाले लोग स्वतंत्र भारत में विभिन्न क्षेत्रों में (राजनीति से परमाणु विज्ञान तक) शीर्ष पदों पर पहुंचे हैं। शायद उन्हें पता नहीं है, संस्कृत के साथ दो अन्य विषयों में शिक्षा प्राप्त स्नातक युवा भारतीय संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में टॉप करने वाले 10-15 लोगों की पंक्ति में आते रहे हैं। गणित की तरह ही इस भाषा के युवा परीक्षार्थी को बिल्कुल सही उत्तर देने पर पूरे अंक मिल जाते हैं। महामहिम बताएं कि अंग्रेजी, इतिहास, समाज-शास्त्र, बायोलॉजी, दर्शन जैसे किस विषय में हर प्रश्न पर पूर्णांक मिल सकते हैं? फिर महामहिम की आपत्तिजनक बड़ी बात यह है कि हर महीने दो-तीन लाख रुपये कमाना या विदेश जा सकना क्या अच्छा शिक्षित और योग्य होने का मानदंड है। उनकी सरकारी सेवा के दौरान करोड़ों रुपये कमाने वाले तांत्रिक चंद्रास्वामी ने बड़े-बड़े नेताओं और अफसरों को मोहित कर कई विदेश-यात्राएं कर लीं, लेकिन क्या उसे आप सही अर्थों में शिक्षित और योग्य व्यक्ति मानेंगे?

महामहिम भले ही देश में जासूसी के मुखिया रहे हों, लेकिन परदेस से आने वालों पर नजर रखने का दायित्व होने के कारण इतना तो जानते होंगे कि दुनिया के मात्र 25 से भी कम देशों की राष्ट्र भाषा अंग्रेजी है। आज भी जर्मनी, हॉलैंड, बेल्जियम, इटली, स्पेन, पोलैंड, चेक गणराज्य, ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, स्वीडन (विख्यात बोफोर्सदाता), हंगरी, रूस, बुल्गारिया, रोमानिया, कजाकस्तान (परमाणु यूरेनियम भंडार वाला), चीन, ब्राजील, अर्जेंटीना, क्यूबा, तंजानिया, जाम्बिया, जापान, दक्षिण कोरिया, स्विट्जरलैंड जैसे अनेकानेक देशों के साथ आर्थिक-व्यापारिक सौदों के लिए उन देशों की ओर से मूल पाठ अंग्रेजी में नहीं बनाया जाता है तथा वार्ताओं में भी वे अपनी भाषा ही बोलना पसंद करते हैं। इसलिए उ.प्र. में शिक्षा संस्थाओं के कुलाधिपति के नाते महामहिम लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर, कानपुर, झांसी, आगरा में ही सही स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, जापानी, चीनी, कोरियन, रूसी, अरबी जैसी भाषाओं की अच्छी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करा दें, तो अंग्रेजी में अगाड़ी रहने वाले भी कम से कम आपसे अधिक तनख्वाह और सुविधाएं पाने की हैसियत में आ जाएंगे। जिस वाराणसी में महामना मदनमोहन मालवीय ने ब्रिटिश-राज में भारतीय शिक्षा व्यवस्था को मजबूत करने का अभियान चलाया, वहां अंग्रेजी पढ़े बिना भिखमंगे रह जाने का दीक्षांत ज्ञान देकर आप किस भारत सरकार की शान में चांद-सितारे लगा रहे हैं? यह तो अफसरशाही पर आश्रित कांग्रेस नेतृत्व वाली केंद्र सरकार के राजनीतिक दिवालियेपन की निशानी है कि उसने राजनीतिक समझ वाले राजनीतिज्ञों की अपेक्षा तथाकथित वफादारी वाले पिटे पिटाये जासूसों या बड़े बाबुओं (कष्ट हो तो अफसर पढ़ सकते हैं) को राज्यपाल अथवा अन्य महत्वपूर्ण पदों पर आसीन करवा दिया। इसी कांग्रेस पार्टी की पूर्व सरकारें, गोविंद नारायण सिंह, भीष्म नारायण सिंह, डॉ. शंकर दयाल शर्मा, मोतीलाल वोरा, मोहम्मद शफी कुरेशी, गांधीवादी आर.आर. दिवाकर और बलिराम भगत जैसे सुलझे राजनीतिज्ञों को राज्यपाल बनाकर विभिन्न प्रदेशों तथा केंद्र के बीच तालमेल के साथ शैक्षणिक संस्थाओं की स्थितियां सुधारने में सहयोग लिया करती थीं। अब तो इलाहाबाद या वाराणसी में ऐसे छत्तीस शिक्षक मिल जाएंगे जो उ.प्र. के राज्यपाल से अधिक अच्छे अंग्रेजी भाषा के जानकार और योग्य होंगे।

दुनिया के 25 से भी कम देशों की राष्ट्रभाषा है अंग्रेजी।

निश्चित रूप से अंग्रेजी भाषा को जानना-पढ़ना और उसका लाभ उठाने पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। लेकिन केवल संस्कृत या चीनी अथवा कोरियन पढ़कर न्यूनतम डिग्री लेने वाले संगीत, क्रिकेट, फुटबॉल, कुश्ती, थियेटर, सिनेमा के क्षेत्र में अद्भुत प्रदर्शन कर करोड़ों रुपया कमा सकते हैं। आज भी आयुर्वेद चिकित्सा के लिए संस्कृत का ज्ञान रखने वाले सही ढंग से भारत जैसे देश में स्वास्थ्य सेवाओं में सर्वाधिक योगदान दे सकते हैं। जीवन में कभी राजमहलों से सेवानिवृत्ति का अवसर मिल सके तो महामहिम जर्मनी के हाइडलबर्ग या चीन के बीजिंग या क्यूबा की राजधानी हवाना जाने का कष्ट करें, जहां अंग्रेजी बोलने वाले भीख मांगते हुए और इन देशों की भाषा का ज्ञान रखने वाले अधिक संपन्न और सुखी स्थिति में हैं। अफ्रीका के कुछ देशों में बड़ी संख्या में अंग्रेजी बोलने-समझने वाले लोग हैं, लेकिन वहां गरीबी और भुखमरी आपके पूर्वी उत्तर प्रदेश से कई गुना अधिक और बदतर है। हां, संस्कृत या संस्कृति के नाम पर अंध विश्वास, ढोंग-पाखंड, कूपमंडूकता या सांप्रदायिकता का जहर फैलाने वालों को कोई भी राज्यपाल या सरकार कड़े से कड़ा दंड दिलवा सके तो उसका स्वागत हो सकता है। लेकिन शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य धनोपार्जन बताना उसी तरह की कट्टरता जैसा अपराध है। दीक्षांत समारोहों में युवा पीढ़ी को नई आशा का संदेश दे सकने वालों से इतनी अपेक्षा की जानी चाहिए कि वे ईमानदारी, परिश्रम और निष्ठा के साथ हर क्षेत्र में काम करने की प्रेरणा दें। महामहिम जरा अपने गुप्तचरों से पता लगवा लें, किसी विश्वविद्यालय में शिक्षा अर्जित न कर सकने वाले हजारों लोग अब भी खेती बाड़ी ही नहीं, जूते-चप्पल-कालीन, कुर्ते-कमीज, जेवर बनाकर हर महीने दो-तीन लाख रुपये कमा लेते हैं। फिर क्या इस देश को शिक्षा के क्षेत्र में जर्मनी, जापान, चीन, अंग्रेजी की मातृभूमि इंग्लैंड, फ्रांस, रूस के मुकाबले श्रेष्ठ विद्वानों की जरूरत नहीं है? पंडित बनाने वाली भाषा में अच्छा शोध करने वालों की तनख्वाहें ही 50 हजार रुपये से अधिक करवा दें, तो शिक्षा जगत में ही नहीं, प्रशासन में भी अधिक काबिल लोग आएंगे।

महामहिम यदि अंग्रेजी के अखबार भी पढ़ते हों तो इसी 4 फरवरी 2007 का 'द हिंदू' अखबार पलटकर देख लें जिसमें संस्कृत-हिंदी और अंग्रेजी पर श्रेष्ठतम अधिकार रखने वाले कांग्रेस के ही पूर्व केंद्रीय मंत्री, पूर्व राज्यपाल, अमेरिका में रह चुके राजदूत और राज्य सभा के वरिष्ठ सदस्य डॉ. कर्ण सिंह द्वारा चेन्नई के संस्कृत कॉलेज में दिया गया भाषण छपा है। डॉ. कर्ण सिंह ने सलाह दी है कि 'देश के सभी विश्वविद्यालयों में संस्कृत विभाग खोले जाएं। संस्कृत में उपलब्ध प्राच्य पुस्तकों में ज्ञान का जितना बड़ा भंडार है, वह दुनिया की किसी भाषा के ग्रंथों में नहीं है।' सवाल यह है कि सरकार, समाज और देश की युवा पीढ़ी अनुभवी सुपर जासूस की सलाह माने या भारत की अस्मिता बनाए रखने वाले विद्वान राजनेता की बात माने? ●